नागरिकता की शिक्षा | तरीक़ों पर सोच-विचार

अरविन्द सरदाना

एकलव्य ने 1980 के दशक में माध्यमिक स्कूल के लिए सामाजिक विज्ञान पर काम शुरू किया। तब हमारे लिए यह समझ पाना मुश्किल हो रहा था कि राज्य की उस समय प्रचलित पाठ्यपुस्तकों में नागरिकशास्त्र से सम्बद्ध हिस्से से हम क्या अर्थ लें। उनके अध्याय या तो नियमों और कार्यविधियों का समूह थे या फिर 'अज्ञानी तथा अशिक्षित' नागरिकों के लिए नैतिक विज्ञान का पाठ। अध्यायों का सिलसिला कमोबेश संविधान के शीर्षकों का अनुसरण करता था, यहाँ तक कि कुछ पंक्तियाँ तो वहाँ से ज्यों-की-त्यों उठा ली गई थीं। यह सब ठीक तो था मगर विद्यार्थी इससे कुछ अर्थ नहीं निकाल पाते थे। शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों के लिए एक सुविधाजनक रास्ता यह था कि महत्त्वपूर्ण सवाल और उनके जवाब याद कर लिए जाएँ।

हमने नागरिकशास्त्र के लिए एक वैकल्पिक ढाँचा अपनाया। इसके तहत हमने इसके विस्तार को बढ़ाया और सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बद्ध प्रसंगों को भी इस के दायरे में ले आए। समकालीन राजनैतिक जीवन पर भी नज़र डालने का फ़ैसला लिया गया। यह भी तय किया कि संस्थाओं के वास्तविक काम को चर्चा में लाते हुए क़ानून के आदर्शों के साथ उनकी तुलना को स्थान दिया जाए – यानी वास्तविकता और क़ानून के आदर्श में तुलनात्मक अन्तर स्पष्ट हो। यह सब कुछ 1986 से 2002 तक चले *एकलव्य* के नवाचारी सामाजिक विज्ञान कार्यक्रम का हिस्सा था। हमने सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों, शिक्षक-प्रशिक्षण और आकलन के नए रूपों पर काम किया।

शिक्षा की हमारी संस्कृति में दो बिल्कुल अलग दृष्टिकोण जड़े हुए हैं। पहला दृष्टिकोण निष्क्रिय नागरिकता का दृष्टिकोण है। इसके तहत अन्य लोगों को शिक्षित करने की ज़रूरत की बात होती है या फिर अज्ञानता से उत्पन्न अभाव को भरने की। इस परिप्रेक्ष्य में एक बड़ा समूह सहभागी है और इस परिप्रेक्ष्य को नागरिकशास्त्र की कक्षाओं में साल-दर-साल ऐसी ही दलीलों के दोहराव से मज़बूत किया जाता रहा है। इनमें सरकारी स्कूलों के कई शिक्षक शामिल हैं जो ख़ुद को नौकरशाह के रूप में देखते हैं। जो सरकार की खुले तौर पर आलोचना नहीं कर सकते।

दूसरा दृष्टिकोण सरकारी शिक्षकों के एक काफ़ी छोटे समूह का है। इनका विश्वास सुविज्ञ तथा विवेचनात्मक नागरिकता में है जो हमारे लोकतंत्र की असफलताओं पर चर्चा करने को तैयार रहेगी। विवेचनात्मक नागरिकता के परिप्रेक्ष्य को सीमित स्वीकार्यता ही हासिल हुई है। इसके तहत सब नागरिकों को बराबर समझा जाता है, इसलिए ग़रीब तथा वंचित तबक़ों को नीचा दिखाते हुए उनके साथ बात नहीं की जा सकती। उन्हें उनकी ग़रीबी या उन पर हो रहे अन्याय का दोष नहीं दिया जाता। इस दृष्टिकोण के तहत मौजूदा संसार में अन्याय, असमानता या भाईचारे की कमी के सामाजिक और ऐतिहासिक कारणों की चर्चा अधिक सूक्ष्मभेदी तरीक़े से की जाती है।

राज्य या केन्द्रीय संस्थाओं के शिक्षकों और शिक्षा से सम्बद्ध प्रशासकों के साथ होने वाली कई अन्त:क्रियाओं में ये परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण सामने आते हैं। ये दृष्टिकोण पाठ्यचर्या-निर्माण और प्रक्रिया को कई महत्त्वपूर्ण तरीक़ों से गहरे तक प्रभावित करते हैं। पाठ्यचर्या-सुधार की प्रक्रिया में विवेचनात्मक नागरिकता को बहुत आसानी से स्वीकार नहीं किया जाता, उसको लेकर विरोध की भावना रहती है, इसलिए इस बारे में गहरे वार्तालाप और जुड़ाव की ज़रूरत है ताकि किसी एक दृष्टिकोण को दूसरे पर थोपा न जाए। इस सन्दर्भ में शिक्षकों के साथ हुए सत्रों से कुछ उदाहरण लेते हैं :

> राजस्थान में हुए एक शिक्षक-प्रशिक्षण सत्र में शिक्षकों के एक समूह ने विरोध जताते हुए कहा कि वे परिकल्पित सवालों पर चर्चा नहीं करेंगे – जैसे कि ग्राम सभा में सीधे, प्रत्यक्ष लोकतंत्र की अवधारणा। उनका आग्रह था कि हम राज्य के मौजूद नियमों के इर्द-गिर्द ही चर्चा करें। सालों से चले आ रहे नागरिकशास्त्र शिक्षण के तौर-तरीक़े ने उन्हें इस विषय को एक ख़ास नज़र से देखने का आदी बना दिया था। वे इस विषय को अगली पीढ़ी तक पहुँचाए जाने वाले कुछ कठोर और कड़े नियमों के समूह के रूप में देख रहे थे।
>
> छत्तीसगढ़ में शिक्षकों के एक समूह ने इस बात पर ज़ोर दिया कि मौसम बदलने पर राज्य से जाने वाले कामगारों का ज़िक्र, पलायन शब्द का इस्तेमाल किए बिना हो। राज्य ने घोषणा की थी कि कोई पलायन नहीं होता है, जबकि रायपुर और बिलासपुर के रेलवे स्टेशन ऐसे लोगों से भरे पड़े थे जो किसी भी हालत में, दिल्ली जाने वाली

रेलगाड़ियों में चढ़ रहे थे।

बन्धुआ मज़दूरी, घरेलू हिंसा या मानवाधिकारों से सम्बद्ध कोई भी मसले पाठ्यचर्या-निर्माण की चर्चा में मुश्किल बिन्दु थे। जब तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता था या अगर हम सरकारी रिपोर्टों का इस्तेमाल करते थे, तब मुद्दे से ध्यान हटाने के लिए दलील दी जाती थी कि ये बच्चे बहुत कमउम्र हैं और इन मुद्दों को समझ नहीं पाएँगे; इन मुद्दों को छोड़ देना ही बेहतर होगा क्योंकि इनसे इन बच्चों के आसानी से प्रभावित होने वाले दिमाग़ों को नुक़सान ही पहुँचेगा। कुछ लोग यह भी कहते थे कि आदर्शों की बात की जानी चाहिए न कि कठोर और भयंकर यथार्थ की। पाठ्यचर्या सम्बन्धित सत्रों में उस के ढाँचे, अध्यायों और दृष्टान्तों को लेकर घण्टों बहस और मोल-तोल होता था।

दो अलग धारणाओं वाले ये समूह अब भी हैं, हालाँकि इनमें विश्वास रखने वालों की संख्या शायद घटती-बढ़ती रहती है। नई और परिवर्तित पाठ्यपुस्तकों के आने पर शिक्षकों के साथ व्यापक वार्तालाप एक लुप्त कड़ी है। इस वार्तालाप के अभाव में कक्षा सम्बन्धी प्रक्रियाओं में बदलाव नहीं आता – पाठ्यचर्या से जुड़ी हुई बेहतर सामग्री उपलब्ध होने पर भी नहीं।

निष्क्रिय बनाम विवेचनात्मक नागरिकता

निष्क्रिय नागरिकता का नज़रिया

अगर नेतृत्व करने वालों का नज़रिया निष्क्रिय नागरिकता वाला रहता है तो नई पहलक़दमियों के पथ से उतरने के इमकान बढ़ जाते हैं। ये दो उदाहरण ही देखिए :

हमारे कार्यक्षेत्र में एक बहुत मुखर, शोर मचाने वाले राजनीतिज्ञ थे। वे हमारे कार्यक्रमों का विरोध यह कहते हुए करते थे कि हमारी पाठ्यचर्या के अध्याय चुने हुए प्रतिनिधियों के ख़िलाफ़ लोगों को भड़काते हैं। क्योंकि पंचायत पर बने हमारे अध्याय में भ्रष्टाचार के विरुद्ध क़दम उठाने की माँग के साथ लोगों को विधायक के घर के बाहर प्रदर्शन करते हुए दिखाया गया था। दूसरी ओर मध्य प्रदेश के उदार शिक्षा-सचिव थे जिन्हें सरकारी स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तक को अनुमोदित करना था। उनका कहना था, “आपको सरकार की आलोचना करनी है तो बिल्कुल करें लेकिन मज़ाक न उड़ाएँ।” सरकार के साथ ताल-मेल में चला यह कार्यक्रम जब तक भी चला, इस तरह के उदार नज़रियों की वजह से ही चला।

साल 2000 के आस-पास इन्दौर के कुछ सम्भ्रान्त स्कूलों ने एकलव्य की सामाजिक-विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को अपनाया। एक स्कूल के शिक्षक शुरुआत में हिचकिचाए लेकिन बाद में उन्हें अपनी कक्षाओं में आनन्द आने लगा। अगले अकादमिक सत्र में इस स्कूल के प्रधानाध्यापक बदल गए। नए मुखिया ने शिक्षकों से इस पहल पर उन की राय माँगी। शिक्षक ईमानदार थे और हमारी पाठ्यपुस्तकों के समर्थन में भी थे। उन्होंने कार्यक्रम को जारी रखे जाने की बात कही। लेकिन उप-प्रधानाध्यापक (वाइस प्रिंसिपल) ने चुपके से शिक्षकों को सलाह दी कि प्रधानाध्यापक कार्यक्रम को जारी न रखने के लिए “सबूत” की फ़िराक़ में हैं। शिक्षकों ने हमें बताया कि अगली बार पूछे जाने पर वे अनिश्चित, अप्रतिबद्ध मुद्रा में रहेंगे क्योंकि वे अपनी नौकरी को सुरक्षित रखना चाहते थे। कार्यक्रम समाप्त कर दिया गया क्योंकि नेतृत्व की राय थी कि शिक्षकों को तो बस अपने काम के प्रति निष्ठावान होना चाहिए और विवेचनात्मक परिप्रेक्ष्य वाली पाठ्यपुस्तकें पश्चिमी दृष्टिकोण को दर्शाती थीं - वे हमारे देश के लिए अप्रासंगिक थीं।

विवेचनात्मक नागरिकता का नज़रिया

विवेचनात्मक नागरिकता के नज़रिए का अर्थ होगा कि आप ख़ुद के सन्दर्भ में संवेदनशील मुद्दों पर चर्चा के लिए विश्वास पैदा करें और चर्चा करने के तरीक़े निकालें। कुछ उदाहरण लेते हैं :

कई नए अध्यायों में यह गुंजाइश बनती है कि ऐसे विचारों को बीच में लाया जाए, उनके साथ जूझा जाए, जिन्हें बच्चे अपनी सामाजिक परिस्थिति से ग्रहण करते हैं। बहरहाल, सबसे प्रभावशाली और कारगर तो अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों और मतभेदों के साथ विमर्श करते हुए जूझने की क्षमता है। इन्दौर के एक सम्भ्रान्त स्कूल की एक शिक्षिका जातीय आरक्षण के मुद्दे पर तो चर्चा करने में हिचकिचाती थीं मगर महिलाओं के लिए आरक्षण को लेकर बहुत मुखर थीं। एक अध्याय में एक प्रश्न से संकेत लेते हुए उन्होंने ऐसी कहानियाँ सुनानी शुरू कर दीं जिनकी वे चश्मदीद थीं। यह भी बताया कि किस तरह बहुत-सी महिलाओं के लिए आरक्षण आगे बढ़ने में मददगार होता है, हालाँकि उन्हें अपनी नौकरी के साथ-साथ घर के काम भी करने होते हैं। जब कुछ लड़कों ने इस पर प्रश्नचिह्न लगाया तो अचानक कक्षा में लड़कियों की तरफ़ से सबूतों की एक झड़ी-सी लग गई। उन्होंने अपने परिवारों की कहानियाँ सुनानी शुरू कर दीं। जिस तरह शिक्षिका ने इस स्वत: स्फूर्त उठी बहस के दौरान अपनी कक्षा का मार्गदर्शन किया, वह सच में अद्भुत था।

एक दिन मुझे उम्र में मुझसे छोटी मित्र का फ़ोन आया। वे शिक्षकों की एक बैठक में पूछे जा रहे सवालों से भौचक्का थीं। शिक्षकों ने उनसे सीधे-सीधे पूछा था, “क्या हमारे लिए हिन्दू राष्ट्र होना सबसे बेहतर नहीं होगा? इससे यह

रोज़-रोज़ के झगड़े ख़त्म हो जाएँगे।" मेरी मित्र की पहली प्रतिक्रिया थी, "वे ऐसा पूछ ही कैसे सकते थे? यह बात तो संविधान के ख़िलाफ़ है।" उन्हें यह बात समझने में कुछ वक़्त लगा कि यह सवाल संविधान के बारे में कम और इस बारे में अधिक था कि हम सम्भवत: किस तरह का समाज बन सकते हैं। हमें आज धर्मशासित नज़रिए को ख़ारिज क्यों करना चाहिए? संविधान एक जीवन्त दस्तावेज़ है और अगर हम इसे ध्यान से पढ़ें तो इसके मूल्यों में अपने विश्वास को फिर से पुष्ट करने में हमें मदद मिल सकती है। संविधान पर केवल वकीलों और अदालतों को ही अमल नहीं करना बल्कि विमर्श के बाक़ी सब रूपों में भी यह होना चाहिए।

इसी तरह, एक शिक्षक ने बताया कि जब वह ओम प्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन से एक अंश पर चर्चा कर रही थीं तो उन्हें कक्षा में एक नाज़ुक स्थिति का सामना करना पड़ गया था। यह एनसीईआरटी की कक्षा 6 की सामाजिक और राजनैतिक जीवन पाठ्यपुस्तक का हिस्सा था। कुछ बच्चों ने दलित विद्यार्थियों को अपना निशाना बनाया और वाल्मीकि ने स्कूल में जिस स्थिति का सामना किया था, उसी की तर्ज़ पर वे दलित विद्यार्थियों से कहने लगे – झाड़ू लगा। शिक्षक विचलित हो गई क्योंकि विद्यार्थियों के इस बरताव से उनका पूरा विमर्श उलट गया। बाद में उन्होंने तय किया कि वे अपने सन्दर्भ में प्रचलित जातीय प्रथाओं पर चर्चा में काफ़ी समय लगाएँगी। ऐसा उन्होंने स्वयं अपने अनुभव के आधार पर तथा कुछ तीखे सवाल उठाते हुए किया : जैसे कि - क्या हम घर पर कुछ लोगों के लिए गिलास अलग से रखते हैं? क्या कुछ लोगों को केवल आँगन तक आने की इजाज़त होती है? उन्होंने एक लम्बी सूची बनाई और चर्चा की, कि ऐसी बातों से किस प्रकार सभी के लिए बराबर इज़्ज़त की धारणा का उल्लंघन होता है। यह भी बड़ी बात है कि वे विद्यार्थियों के बीच व्यक्तिगत वैर-भाव को भड़काए बिना ऐसा कर पाईं।

अपने विश्वास के रूप में हम निष्क्रिय नागरिकता को ग्रहण करते हैं या विवेचनात्मक नागरिकता को, निकट भविष्य में इस बात का महत्त्व और भी ज़्यादा बढ़ने वाला है। समकालीन परिस्थितियों में जब वर्तमान क़ानूनों द्वारा समाज में विभाजन को भड़काया जा रहा है, जैसे कि सीएए या 'लव जिहाद' के रूप में, तो सम्भावना यह है कि राज्य का झुकाव निष्क्रिय नागरिकता के विश्वास की ओर देखने में आएगा। आसार हैं कि कर्तव्यों, अनुशासन और निष्ठा पर बल दिया जाएगा जबकि मानवाधिकारों, समाज कल्याण, समाज के भीतर हाशियाकरण और शोषण की बातों को शक की निगाह से देखा जाएगा। बहुत सम्भावना है कि पाठ्यचर्या-सुधार के लिए उदार नज़रियों की जगह सीमित ही होगी।

लेकिन इस निराशावादी परिदृश्य में भी हमें ऐसी अनपेक्षित गुंजाइश मिल सकती है कि पाठ्यचर्या को लेकर स्वागत योग्य हस्तक्षेप किए जा सकें। यह ज़रूर है कि अगर हमें विवेचनात्मक नागरिकता के अपने विश्वास पर बने रहना है तो पाठ्यचर्या से इतर गुंजाइश की जगहों की ओर अधिक रचनात्मक तथा ऊर्जावान तरीक़े से बढ़ना होगा। इसीलिए, शिक्षकों के व्यवहार और कार्यों से हम जो कुछ सीख सकते हैं, अब उस पर चर्चा करते हैं।

शब्दों से अधिक व्यवहार बोलता है

एक करने लायक़ काम तो यह है कि शिक्षक अपनी परिस्थितियों में जो पहल कर रहे हों, उन्हें हम पहचानें और प्रोत्साहित करें। भारत में लोकतंत्र की रचना दो तरह से प्रतिकूल परिस्थितियों में हुई – एक तो ऐसे समाज में जिसकी बुनियाद जातीय व्यवस्था की ग़ैर-बराबरी पर टिकी थी और दूसरा, एक राजसी तथा निरंकुश राज्य में। शुरुआती स्थितियाँ अविश्वसनीय-सी थीं तो दूसरी ओर लोकतंत्र को ऐसी परिस्थितियों में पनपना पड़ा है जिन्हें अगर परम्परागत राजनैतिक सिद्धान्तों की नज़र से देखें तो वे भी अनुकूल नहीं रही हैं – यानी एक ग़रीब, निरक्षर और अत्यधिक वैविध्यपूर्ण नागरिक समाज की परिस्थितियाँ। लेकिन न केवल यह लोकतंत्र बचा रहा है, इसने भारतीय समाज को अभूतपूर्व तरीक़ों से ऊर्जावान बनाने में भी सफलता पाई है। शुरुआत में कोमल, विधि-परायण राष्ट्रवादी अभिजात वर्ग द्वारा लोकतंत्र को एक शासन-प्रणाली के एक रूप में लाया गया था। लेकिन फिर लोकतंत्र को विस्तार और गहराई देते हुए समाज का एक सिद्धान्त बनाया गया और इसने भारतीयों के पास उपलब्ध सम्भावनाओं को सकारात्मक रूप से परिवर्तित कर दिया। *उन्होंने [भारत के लोगों ने] इसे अपना लिया है, और उन्होंने इसके बारे में पाठ्यपुस्तकों से नहीं बल्कि तात्कालिक व्यवहार से सीखा है। लेकिन भारत के लोकतंत्र की कामयाबी ही संस्थागत स्तर पर इसके निरन्तर ज़िन्दा रहने के लिए ख़तरा भी है। (द आइडिया ऑफ़ इंडिया, सुनील खिलनानी। इटैलिक्स मैंने किया है।)*

नागरिकता के बारे में शिक्षा एक *जिया हुआ अनुभव होना चाहिए। यह किसी व्यक्ति के ख़ुद के सन्दर्भ में लोकतंत्र के साथ गुत्थम-गुत्था* होने का अनुभव होना चाहिए। यह सुनील खिलनानी द्वारा अपनी पुस्तक में कही गई बात का अनुमोदन है। यह ऐसा समय भी है जब लोकतंत्र के ज़िन्दा रहने पर ख़तरा मँडरा रहा है। इससे पहले कि मैं इस बारे में चर्चा करूँ कि भविष्य के लिए क्या व्यवहार्य है, मैं शिक्षकों द्वारा लोकतंत्र को व्यवहार में लाने के लिए इस्तेमाल किए गए विचारशील

और रचनात्मक तरीक़ों की एक रूपरेखा रखूँगा। हमारे समाज में लोकतंत्र के गहरे होने में इस तरह के क़दमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अगर हम शिक्षकों के जिए हुए अनुभवों पर नज़र डालें तो हमें अपने इलाक़ों में ही कई उदाहरण ज़रूर मिल जाएँगे। बात बस इतनी-सी है कि हमने उन्हें देखा नहीं है और हम उनके मूल्य और उनमें छुपी हुई सम्भावनाओं को पहचानते नहीं हैं।

मैं एक दलित शिक्षक को जानता हूँ जो सामाजिक विज्ञान के समूह का हिस्सा थे और जिस गाँव में उनकी नौकरी थी, उसी में दो दशक से भी अधिक तक रहे थे। वे दलित मुद्दों को लेकर बहुत जज़्बाती और उत्साही थे लेकिन कक्षा में या हमसे भी उन मुद्दों पर कोई ख़ास बात नहीं करते थे। बहुत बाद में मुझे इस बात का एहसास हुआ कि वे दलित बच्चों की शिक्षा में मददगार होने के लिए प्रतीकात्मक क्षणों और सूक्ष्म तरीक़ों का चुनाव करते थे। एक घटना मेरी याद में बहुत साफ़तौर पर मौजूद है। एक अभिभावक अपने बच्चे के तबादला सर्टिफ़िकेट के लिए उनसे मिलना चाहते थे मगर वे स्कूल-परिसर में आने से कतराते थे। वे आँगन में रहते हुए ही बात करते थे। शिक्षक ने बात समझ ली। वे कक्षा से बाहर आए और अभिभावक को अन्दर आने के लिए धीरे-धीरे मना लिया; उन्हें कुर्सी पर बैठाया, हालाँकि अभिभावक बहुत ही असहज महसूस कर रहे थे। शिक्षक उनसे अनौपचारिक बात करते रहे और साथ ही फ़ाइलों में सर्टिफ़िकेट को भी तलाशते रहे। इस बीच पूरी कक्षा यह सब घटित होते हुए देखती रही और उसके अर्थ को भी जज़्ब करती रही।

वे अन्य कई तरीक़ों से भी ऐसा ही कुछ व्यवहार में लाते थे। एक बहुत ग़रीब परिवार की लड़की की शिक्षा में और उसकी हॉस्टल फ़ीस अदा करने में भी उन्होंने मदद की। यह लड़की बहुत ही कठिन और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों का सामना करते हुए शिक्षक बनी। इसी तरह उन्होंने ग़रीब परिवारों के कई लड़कों को कक्षा 8 का इम्तिहान देने के लिए प्रोत्साहित किया ताकि बाद में उन्हें विकसित हो रहे परिवहन क्षेत्र में काम मिल पाता। कई साल बाद इस शिक्षक ने बताया कि उनके द्वारा उठाए गए कई ऐसे क़दम इसलिए सम्भव हो पाए क्योंकि *उन्हें स्कूल के अपने सहकर्मियों का मौन समर्थन मिला।* यह ख़ामोश बिरादरी सार्वजनिक चर्चा से बचती थी, मुखर नहीं थी, मगर इसका प्रभाव बहुत था।

पड़ोस के एक गाँव के एक अन्य दलित शिक्षक ने गाँव के विद्यार्थियों के लिए एक ट्यूशन केन्द्र खोला ताकि वे जवाहर नवोदय विद्यालय की प्रवेश परीक्षा में स्थान बना पाएँ, जहाँ शिक्षा और देख-रेख राज्य-समर्थित होती है। एक दलित शिक्षक द्वारा एक ऐसा कोचिंग केन्द्र चलाया जाना दुर्लभ ही है जहाँ ग्रामीण समाज के सभी जाति-समूहों के बच्चे आते हों - लेकिन उन्हें इसमें सफलता मिली। यही वे अनुभव हैं जिनके माध्यम से विद्यार्थी इस विचार को जज़्ब कर पाएँगे कि गाँव में चाहे न हों मगर स्कूल के परिसर में सभी बराबर हैं।

एक माध्यमिक स्कूल के शिक्षकों के एक समूह ने अपने स्कूल में लड़कियों की शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए एक सरल तरकीब निकाली। सरकार की *ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड* योजना (1986) के अन्तर्गत महिलाओं को प्राथमिक स्कूल शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था और इसके सकारात्मक नतीजे निकले थे। अब ज़्यादा लड़कियाँ प्राथमिक शिक्षा पूरी करके माध्यमिक स्कूल में दाख़िला लेने लगी थीं जबकि इस स्तर पर परिवार के दबाव और सुरक्षा सम्बन्धी मुद्दे बढ़ने लगते हैं। स्थानीय समुदाय में अपनी जड़ें रखने वाले शिक्षकों के इस समूह ने लड़कियों के माता-पिता को उनकी सुरक्षा के सम्बन्ध में पक्का भरोसा दिलाया और उनसे आग्रह किया कि वे लड़कियों को माध्यमिक स्कूल में दाख़िला लेने दें। चूँकि स्कूल गाँव के बाहरी छोर पर था, इसलिए एक मूलभूत क़दम तो यह उठाया गया कि लड़कियों की छुट्टी पहले कर दी जाती थी। उन्हें दस मिनट की छूट दी जाती थी और इतने समय में वे इकट्ठे एक समूह में स्कूल से गाँव के चौक तक पहुँच जाती थीं। नियमों में इस सरल से बदलाव के चलते माता-पिता का विश्वास बहुत बढ़ गया और लड़कियों ने बड़ी संख्या में दाख़िला लिया।

एक और उदाहरण। एक कन्या हाई स्कूल के मुख्याध्यापक तथा सामाजिक विज्ञान के अध्यापक ने चारदीवारी-निर्माण के साथ बदलाव की प्रक्रिया शुरू की और फिर इसके बाद पुस्तकों, छात्रवृत्तियों और वर्दियों के सही वितरण का काम भी किया। उन्होंने यह भी सुनिश्चित किया कि कक्षाएँ समयसारणी के अनुसार ही लगें। इस स्कूल में लड़कियों का दाख़िला एक साल के भीतर 80 से बढ़कर 400 तक जा पहुँचा और कई लड़कियाँ तो अपेक्षाकृत छोटे प्राइवेट स्कूलों को छोड़कर वापस सरकारी स्कूल में आ गईं।

एक गाँव के माध्यमिक स्कूल के एक शिक्षक स्कूल लगने से आधा घण्टा पहले आ जाते और एक छोटे ब्लैकबोर्ड पर दिन के प्रमुख समाचार लिख दिया करते थे। यह संक्षेप में होता था और इसमें बहुत से विषय आ जाते थे। वे बहुत ही कुशलता के साथ स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख़बरों का चयन किया करते थे। बच्चे इसे पढ़ा करते थे और अक्सर ब्रेक के समय अपनी कॉपी में भी लिख लेते थे। यह वह समय था जब धीरे-धीरे टीवी की पहुँच बढ़ रही थी लेकिन उस बड़े गाँव में कुछ ही समाचार-पत्रों का वितरण होता था। बच्चों का यात्रा का अनुभव आस-पास के गाँवों तक सीमित था, यहाँ तक कि पड़ोस के उज्जैन तथा देवास नगरों तक भी उनका जाना बहुत कम ही था। समय के साथ शिक्षक के इस क़दम के नतीजे

आने शुरू हो गए – बच्चे कक्षा में सवाल पूछते, जो अक्सर समाचारों में उल्लिखित स्थानों के बारे में होते, और कई बार ऐसे प्रश्न भी पूछते, कि भूकम्प क्यों आता है या कोई युद्ध क्यों हुआ है? ख़बरों से जुड़ी कुछ छोटी-छोटी बातें वे आपस में भी करते और घर पर भी। वे इस सब में काफी रुचि लेते और दिन की ख़बरों का उत्सुकता से इन्तज़ार करते। यह उनके लिए संसार को देखने की खिड़की थी।

एकलव्य के किशोरावस्था स्वास्थ्य प्रोग्राम से सम्बद्ध सरकारी स्कूलों की शिक्षिकाएँ इस बात को लेकर स्पष्ट थीं कि कई मुद्दों के बारे में लड़कियों के साथ साफ़गोई से चर्चा करना ज़रूरी था। लैंगिक मुद्दे, घरेलू हिंसा, मासिक धर्म और गर्भनिरोध आदि इनमें से कुछ विषय थे। पितृसत्तात्मक समाज में इन मुद्दों पर बात करना आसान नहीं था लेकिन हैरत की बात थी कि ये महिलाएँ कितनी अविचलित और निर्भीक थीं – उन्होंने ये कार्यशालाएँ करने में एक-दूसरे को सहयोग दिया। इस मौक़े का लाभ उठाने को लेकर उनकी उद्देश्यपूर्णता और उत्सुकता इन मुद्दों के साथ उनके अपने गहरे संघर्षों से पैदा हुए थे। उनमें से किसी के लिए भी शिक्षक बन पाना और उसके बाद परिवार और स्कूल, दोनों से जुड़ी भूमिकाएँ निभाना आसान नहीं रहा था। महिलाओं के इस समूह का मेल-जोल और एकजुटता कमाल की थी और बीते सालों में भी बनी रही है।

स्कूली शिक्षा के सन्दर्भ में, पाठ्यचर्या से जुड़ी सामग्रियों पर तो ध्यान केन्द्रित रहा है लेकिन शिक्षकों के दृष्टिकोणों और दुनिया को देखने के नज़रियों को लेकर उनके साथ लगभग कोई भी संवाद नहीं होता। लोकतंत्र के जिए हुए सन्दर्भ में, शिक्षकों के कई अनुभव हमें वैचारिक स्तर पर अर्थपूर्ण जुड़ाव के कई रास्ते दिखाते हैं। संवैधानिक मूल्यों के साथ जुड़ने के लिए वे सूक्ष्म और दक्ष तौर-तरीक़े इस्तेमाल में लाते हैं और अगर शिक्षकों की स्वायत्तता को मज़बूती दी जाए तो इन तरीक़ों से रचनात्मक पथ खुलते हैं। शिक्षक और स्कूल की टीम के लिए स्वायत्तता की संस्कृति बदलाव के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण और निर्णायक कारक है। किशोरावस्था के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम से सम्बद्ध टीम के सुझाव के अनुसार एक तरीक़ा यह है कि विषय-विशेष की कार्यशालाएँ की जाएँ, शिक्षकों का समकक्ष-समूह बने और पाठ्यक्रम को पूरा करने के संकुचित दायरे में पड़े बिना पाठ्यचर्या से एक ढीला-ढाला सा नाता रखा जाए। (अनु गुप्ता, *हेल्थ एजुकेशन : सम इन्साइट्स*)

यह तो स्पष्ट है कि नागरिकता की शिक्षा में काम करने का कोई एक सूत्र नहीं है। सहायक संरचनाएँ तो कई हो सकती हैं लेकिन कार्रवाइयाँ स्थानीय सन्दर्भ में सहज, व्यवस्थित तरीक़े से प्रकट होंगी। बात नियमित पाठ्यचर्या के दायरे से बाहर निकलकर सोचने की है और विषयों से जुड़ा एक विश्वसनीय ढाँचा बनाने की है। शिक्षकों की भागीदारी को मज़बूती देना, उनके परिप्रेक्ष्यों पर चर्चा करना और कार्य करने के लिए उनकी स्वायत्तता के दायरे को बढ़ाना महत्त्वपूर्ण है।

यह लेख देवास के दिवंगत पन्ना लाल चव्हाण की याद को समर्पित है।

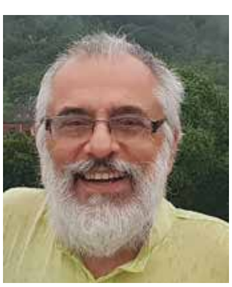
References

Anu Gupta, *Health Education: Some Insights, in School Health Services in India*, Rama Baru (ed), Sage, 2008, New Delhi.

Poonam Batra, (edited) *Social Science Learning in Schools*, Sage, 2010, New Delhi.

Alex M George, *Political Science Images in Schooling: Personal experiences of the Textbook-making Process, Contemporary Education Dialogue*, 2018, Sage.

Sunil Khilnani, *The Idea of India*, Penguin Books, India, 2012



अरविन्द सरदाना एकलव्य के सामाजिक विज्ञान समूह के सदस्य हैं। वे एनसीईआरटी तथा अन्य राज्य सरकारों की पाठ्यपुस्तक-विकास की प्रक्रियाओं से जुड़े रहे हैं। उनसे arvindewas@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** रमणीक मोहन